Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन एवं कांग्रेस की प्रतिक्रिया

गौरव
शोध–छात्र,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश - महात्मा गांधी का भारत में **असहयोग** आंदोलन, दक्षिण अफ्रीका में उनके स्वनिर्मित **सत्याग्रह** के विचारों पर आधारित था। जिसके मूल तत्व सत्य व अहिंसा थे। महात्मा गांधी अपने विचारों और संघर्षों को लेकर दक्षिण अफ्रीका में पिछले 23 सालों से प्रयोगशील रहे थे। जिनके आधार पर उनकी एक विशिष्ट राजनीतिक शैली निर्मित हो चुकी थी। भारत की परिस्थितियों के अनुसार, वह उनमें संशोधन कर उन्हें भारत में संघर्ष के अनुकूल बना रहे थे। इसी अनुकूलन का एक उत्पाद असहयोग के रूप में उद्घाटित हुआ। असहयोग की रणनीति का उन्होंने दक्षिण अफ़ीका में रंगभेदी सरकार के विरुद्ध प्रयोग नहीं किया, क्योंकि वहाँ के शासन–प्रशासन में भारतीयों की कोई उपस्थिति नहीं थी। जिससे कि सरकार से असहयोग करके उन्हें झुकाया जा सके। परन्तु यहाँ भारत में असहयोग के लिए समुचित आधार उपस्थित थे। भारत में ब्रिटश प्रशासन मूलत: भारतीयों के सहयोग पर ही आधारित था। यदि भारतीय अंग्रेज़ी प्रशासन एवं संस्थाओं से स्वयं को अलग कर लें तो भारत में अंग्रेज़ो का शासन करना असंभव हो जाता। इसी तथ्य की उपयोगिता पर गांधी का असहयोग आंदोलन आधारित था।भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने जन्म से मूलत: एक नरमपंथी उदारवादी राजनीतिक संस्था थी। जो ब्रिटिश उदारवादी संवैधानिक संघर्ष की पद्धति का अनुसरण करते हुए उत्तरोतर संवैधानिक सुधारों की माँग करती थी। यद्यपि **बंगाल विभाजन(1905)** से उत्पन्न रोष ने कांग्रेस को कुछ समय के लिए गरमपंथी नेताओं के प्रभाव में ला दिया था। परन्तु शीघ्र ही वह अपनी पुरानी राजनीतिक प्रणाली का अनुसरण करने लगी। जो असहयोग आंदोलन के प्रारम्भ होने से पूर्व तक कमोबेश उसी पथ पर चलती रही। महात्मा गांधी ज्ञापन व याचना आधारित संवैधानिक राजनीति का मार्ग छोड़ **सत्य** व **अहिंसा** आधारित सत्याग्रह का मार्ग अपना चुके थे। वहीं, कांग्रेस अब भी संवैधानिक राजनीति के मार्ग पर थी। ऐसे में, उसके लिए गांधी के असहयोग आंदोलन के मार्ग को अपना लेना सहज नहीं रहा होगा। असहयोग आंदोलन एवं उसके प्रति कांग्रेस की क्रमिक प्रतिक्रिया का अध्ययन इस शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्द- महात्मा गांधी, असहयोग, आंदोलन, कांग्रेस।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ़ीका में नस्लभेदी सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह संघर्ष में विजयी होकर 1915 के प्रारम्भ में भारत पहुँचे। अपने राजनीतिक गुरु गोखले की सलाह का अनुसरण करते हुए गांधी ने एक वर्ष तक राजनैतिक क्रिया–कलापों से दूर,भारत–भ्रमण करते हुए पूरे देश की स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन किया। गांधी ने भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से प्रवेश बिहार के एक जिले **चम्पारण** में किसानों की समस्या से किया। गांधी ने चंपारण में निलहे किसानों की समस्या का अवलोकन करने के पश्चात 'भारत में सत्याग्रह के प्रथम प्रयोग का निश्चय किया।'[1] ये किसी नए चमत्कार से कम नहीं था

कि भारतीय राजनीति उनका पहला क़दम किसानों के बीच से निकला। चम्पारन सत्याग्रह के पश्चात उन्होंने **अहमदाबाद मिल मजदूरों** व **खेड़ा किसानों की समस्याओं** में सफलता पूर्वक हस्तक्षेप करते हुए समस्याओं का निदान किया। ये तीनों मुद्दे अपनी प्रकृति में स्थानीय थे। इनमें से किसी का विषय राष्ट्रीय प्रकृति का अथवा देश की सम्पूर्ण जनता से सम्बन्धित नहीं था।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रव्यापी स्तर का प्रथम सत्याग्रह आंदोलन **रौलेट क़ानून** के विरुद्ध किया। रौलेट सत्याग्रह का प्रारम्भ बहुत साधारण रूप में किया गया। गांधी ने जनता से प्रार्थना-उपवास रखकर आत्म शुद्धि के द्वारा इसे आरम्भ करने का निर्देश दिया। किसी प्रकार की अव्यवस्था से बचने के लिए उन्होंने इसके लिए रविवार(6 अप्रैल, 1919) के अवकाश का दिन निश्चित किया। गांधी ने मजदूरों को सलाह दी कि, "जिनके कार्यदिवस रविवार को भी हैं, वे अपने मालिकों की अनुमति से ही सत्याग्रह में भाग लें।"[2] यह भारत में प्रथम राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आंदोलन था। गांधी आरम्भ में ही किसी प्रकार के संघर्ष की स्थिति उत्पन्न नहीं होने देना चाहते थे। 'इसी रौलेट ऐक्ट के पारित होने से जनता में जो उत्तेजना फैली उसके चलते ही पहली बार एक अखिल भारतीय सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ किया गया।'[3]

महात्मा गांधी ने अपने सत्य-अहिंसा आधारित सत्याग्रह के नवीन विचार का निर्माण एवं प्रयोग अपने दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष में किया। गांधी सत्याग्रह की नीति अपनाने से पूर्व, अपने कार्यों में नरमदलीय संवैधानिक पद्धति का प्रयोग करते थे। परंतु उन्होंने नरमदलीय **याचना** व **ज्ञापन** की पद्धति की अप्रभाविता को स्पष्ट रूप से देखा। इसके पश्चात ही उन्होंने भारतीय प्रवासियों के हितों के लिए एक शांतिपूर्ण संघर्षशील सत्याग्रह का मार्ग अपनाया। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का प्रमुख प्रयोग **सविनय अवज्ञा** के रूप में हुआ।

परन्तु भारत में गांधी ने सविनय अवज्ञा को पीछे रखते हुए असहयोग के विचार को प्रथम स्थान दिया। इसका कारण भारत की परिस्थितियों का दक्षिण अफ्रीका से भिन्न होना था। गांधी ने भारत में अंग्रेजी औपनिवेशिक सरकार के 'शासन आधार' को 1909 ई. में लिखी अपनी पुस्तक **हिन्द स्वराज** में ही स्प्ष्ट कर दिया था। भारत में अंग्रेजों की विजय एवं उनके यहाँ स्थायी रूप से टिके रहने का कारण स्प्ष्ट करते हुए गांधी ने लिखा, 'हिंदुस्तान को अंग्रेजों ने हमसे लिया नहीं, हमने ख़ुद उन्हें सौंप दिया। हिंदुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके है, हमनें उन्हें टिका रखा है।[4]

गांधी भारतीयों द्वारा अंग्रेजों को प्रदान किये जा रहे सहयोग को समाप्त करने के लिए असहयोग को अपना हथियार बनाया। यह विडम्बना ही थी कि भारत पर ब्रिटिश गुलामी की बेड़ियाँ स्वयं भारतीय लोहे से निर्मित थी। उल्लेखनीय तथ्य है कि भारत में अंग्रेजी शासन नाम-मात्र के अंग्रेजों द्वारा किया जाता था। 'अंग्रेज भारत में उसकी सम्पूर्ण जनसंख्या के कभी भी 0.05 प्रतिशत से अधिक नहीं रहे।'[5] 1911 की जनगणना के अनुसार, भारत के ब्रिटिश प्रदेशों एवं देशी राज्यों को मिलाकर कुल जनसंख्या लगभग 31.6 करोड़ थी।[6] उस समय 164000 अंग्रेज भारत में रह रहे थे, जिनमें से 66000 सेना और पुलिस तथा 4000 प्रशासनिक सेवा में थे।[7] अंग्रेजों की मात्र इतनी संख्या भारत जैसे विशाल देश को अपने अधीन जकड़े हुए थी। नि:संदेह एक बहुत बड़ी संख्या में भारतीय साम्राज्य के प्रति सहयोगी प्रवृत्ति अपनाए हुए थे। गांधी ने भारतीयों को ब्रिटिश शासन से सहयोग वापस लेने को प्रेरित करने हेतु असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, अपने जन्म से एक नरमदलीय संवैधानिक उदारवाद की नीति पर चलने वाली राजनीतिक संस्था थी। बंगाल विभाजन(1905) से उत्पन्न जन-आक्रोश ने उसे कुछ समय के लिए गरमपंथ की तरफ़ झुका दिया था। जिसके प्रभाव में कांग्रेस ने गैर-संवैधानिक राजनीतिक संघर्ष **स्वदेशी** व **बहिष्कार** को अपना समर्थन दिया।[8] परन्तु कांग्रेस के सूरत विभाजन(1907) के साथ गरमपंथी तौर-तरीकों को तिलांजलि देकर पुन: नरमदलीय संवैधानिक मार्ग अपना लिया गया। बाल गंगाधर तिलक के जेल से छूटने पर नरम व गरम दल 1916 में पुन: एक हुए। इसके बावजूद कांग्रेस की नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में उसका लक्ष्य "वैध उपायों द्वारा भारतीय साम्राज्य के निवासियों के स्वार्थों और हितों को बढ़ाना" घोषित किया गया। उसने संवैधानिक माध्यमों से चरणबद्ध रूप में साम्राज्य के अंदर स्वशासन प्राप्त करने का अपना वचन पुन: दोहराया। जब तिलक और एनी बेसेंट ने अपना **होमरूल आंदोलन** चलाना चाहा तो उन्हें कांग्रेस से किसी प्रकार का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। परिणामत: उन्होंने कांग्रेस से बाहर निर्मित 'होमरूल लीग'

के माध्यम से अपना आंदोलन संगठित किया। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि तिलक और बेसेंट के उद्देश्य कांग्रेस के उद्देश्य से भिन्न नहीं थे। सभी औपनिवेशिक स्वशासन हेतु संघर्षशील थे, अंतर केवल पद्धतियों का था।

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से ही भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति ख़राब होने लगी थी, जो युद्ध के अंत तक काफ़ी बिगड़ चुकी थी। उसके हालात को मौसम और दुनिया भर में फैले स्पेनिश फ्लू ने और भी बदतर बना दिये थे। समाजिक–आर्थिक स्थिति का राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव पड़ना निश्चित ही था। युद्ध के अंतिम समय तक भारतीय राजनीतिक वातावरण पर असन्तोष के बादल छा चुके थे। तिलक–बेसेंट के होमरूल आंदोलन का प्रभाव जोरों पर था। लेकिन यह आंदोलन अपने सामाजिक आधार में बहुत छोटा था। यह केवल शिक्षित मध्यवर्ग के बीच शहरों में ही सीमित था। भारत के गांवों और कस्बों में रहने वाली करोड़ों जनता के दुखों–दर्दों को आवाज़ देने वाला कोई भी व्यक्ति भारतीय राजनीति में मुखर नहीं था। औपनिवेशिक स्वशासन केवल मध्यवर्ग के आकर्षण का विषय था। भारत की आम जनता के दैनिक दु:खों– गरीबी, महँगाई, रोज़गार इत्यादि की आवाज़ मुखरित करने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था। प्रथम विश्वयुद्ध में बलपूर्वक सैनिक भर्ती भी एक असन्तोष का प्रमुख कारण थी। विशेषकर पंजाब प्रान्त में, वहां की प्रान्तीय सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों से नवयुवकों की ज़बर्दस्ती सेना में भर्ती की। इसका प्रभाव कृषि क्षेत्र पर गया, जहाँ मानव श्रम की अनुपलब्धता हो गयी। इससे खेती के कार्यों में विघ्न आया और पैदावार कम हो गयी। आम जन का जीवन इससे और निम्नतम स्तर पर पहुँच गया।

देश में चारों तरफ़ और सभी वर्गों में एक असन्तोष पनप रहा था। औपनिवेशिक सरकार ने लोगों की समस्याओं को दूर करने के बज़ाय उनके असन्तोष को दृढ़ता से दबाया। इस कारण से गुप्त क्रांतिकारी संगठनों को सक्रिय होने का अवसर मिला। जो ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने को उत्सुक थे। 'भारत सरकार ने देश की सुरक्षा के नाम पर 1915 में **भारत रक्षा कानून** पारित किया, जिसमें अधिकारियों को लोगों को नज़रबंद करने की शक्ति प्रदान की गई।'[9] इस क़ानून के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों के दमन के साथ आम जनता की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर भी बेड़ियाँ डाल दी गयी।

इन्ही परिस्थितियों में महात्मा गांधी अपने विशिष्ट राजनैतिक दृष्टिकोण एवं पद्धति के साथ भारतीय राजनीति में क़दम रखा। भारत पर विप्पत्ति के बावज़ूद राजनीतिक वर्ग ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में पूर्ण समर्थन कर रहा था। भारतीयों को आशा थी कि उनके युद्ध प्रयत्नों में सहयोग से उन्हें अत्यधिक स्वशासन के अधिकार मिलेंगे। इस विचार को ब्रिटिश राजनेताओं ने प्रोत्साहित भी किया था। इसके अतिरिक्त मित्र–राष्ट्रों की ये घोषणा कि वे स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं और युद्धोपरांत जनता के **आत्मनिर्णय के सिद्धांत** को विश्व भर में मान्यता दी जाएगी। भारतीयों की आशाएँ प्रबल हो उठी थी। गांधी स्वयं सेना के **भर्ती सार्जेंट** बन कर नवयुवकों को सेना में जाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। तिलक जो प्रबल सरकार विरोधियों में गिने जाते थे, युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के सहयोग का आह्वान करते हुए जनता से अपील कर रहे थे, "ऐसे संकट काल में प्रत्येक अमीर–गरीब, छोटे–बड़े भारतीय का कर्तव्य है कि वह अपनी योग्यतानुसार महामहिम की सरकार का सहयोग करे।"[10]

युद्ध के प्रारंभिक वर्षों में जब अनिश्चितता की स्थिति थी, ब्रिटिश सरकार भारतीयों के सहयोग की तारीफ़ किया करती थी। विभिन्न प्रकार के आश्वासन दिए गए। परन्तु जैसे–जैसे युद्ध का पलड़ा अंग्रेजों की तरफ़ झुकने लगा, उनके व्यवहार में भी परिवर्तन आने लगा। यदि ब्रिटिश सरकार का भारतीयों के प्रति रुख़ कुछ नरम भी था, तो वहीं भारत सरकार किसी भी तरह से देश पर से अपना प्रशासनिक शिकंजा ढीला नहीं करना चाहती थी। भारत सचिव मांटेग्यू ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में 20 अगस्त, 1917 को भारत के लिए संवैधानिक सुधारों की घोषणा की। इसमें भारत के लिए स्वशासन का आश्वासन प्रदान किया गया था। मांटेग्यू की रिपोर्ट 8 जुलाई, 1918 को प्रकाशित हुई। उनके सुझाओं को देखकर भारतीय नेताओं को झटका लगा, वे स्वयं को ठगा हुआ महसूस किए।

तिलक ने इन सुधारों को 'पूर्णत: अस्वीकार'[11] बताया वहीं बेसेंट ने उसकी निंदा करते हुए कहा कि, "यह योजना प्रस्तुत करना इंग्लैंड के शान के ख़िलाफ है और इसे स्वीकार करना भारत की शान के ख़िलाफ।"[12] कांग्रेस ने योजना को 'निराशाजनक एवं असन्तोषप्रद'[13] कहा। कांग्रेस के नरमपंथी, जो योजना को पूर्णत: स्वीकार करने के पक्ष में थे,

स्वयं कांग्रेस से अलग होकर **लिबरल फेडरेशन**[14] नामक संगठन तले एकत्रित हो गए। महात्मा गांधी प्रारम्भ में उग्रपंथियों केविपरीत इन सुधारों को एक बार स्वीकार किये जाने के पक्ष में थे। परंतु ब्रिटिश सरकार की वादाख़िलाफी एवं भारत सरकार के दमनकारी व्यवहार ने उनके मत को पूर्णत: परिवर्तित कर दिया। इन सुधारों को छोड़ वह आगे चलकर स्वराज के लिए राष्ट्रव्यापी संघर्ष का आह्वान किये।

जब ब्रिटेन में भारतीय संवैधानिक सुधारों की बात चल रही थी, उसी समय भारत सरकार युद्धोपरांत भारत पर अपने शिकंजे को बनाये रखने के लिए युद्धकाल में निर्मित **भारत रक्षा कानून** के स्थान पर उसी प्रकार के अन्य कानून बनाने का कार्य कर रही थी। जबकि ब्रिटेन में भारत को कुछ स्वशासन देने पर विचार हो रहा था, यहाँ भारत सरकार व्यक्तियों के निजी अधिकारों का भी गला घोंटने को तत्पर थी। भारत सरकार ने क्रांतिकारी गतिविधियों की आड़ लेकर रौलट की अध्यक्षता में एक **सेडिसन कमेटी** बनाई। जिसका उद्देश्य सरकार को देश में अशांति को प्रभावी रूप से रोकने हेतु सलाह देना था। 'महात्मा गांधी रौलेट कमेटी की सिफ़ारिशों को पढ़कर चौंक गए।'[15] उन्होंने कहा, "कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र ऐसे क़ानूनों को स्वीकार नहीं कर सकता।"[16] रौलेट कमेटी की सिफ़ारिशों के आधार पर भारत सरकार ने दो क़ानून बनाये। भारतीयों के प्रबल विरोध के बावज़ूद इन क़ानूनों को 21 मार्च, 1919 को धारा सभा में पारित कर दिया गया।

महात्मा गांधी ने रौलेट क़ानूनों के विरोध में देशव्यापी सत्याग्रह आंदोलन छेड़ने का निश्चय किया। 6 अप्रैल, 1919 को देश-व्यापी सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया। पूरे देश में कोने-कोने से लोगों ने अपनी सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। इसी बीच 13 अप्रैल को **जलियांवाला बाग हत्याकांड** हुआ। जब देश को ब्रिटिश शासकों के इस नृशंसतापूर्ण कार्य का पता चला तो उनके दिलों में ब्रिटिश शासन के प्रति जो कुछ सद्भाव शेष था, वह भी समाप्त हो गया।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत **ख़िलाफत** का मुद्दा भी गर्म हो चुका था। अंग्रेज़ युद्धकाल में भारतीय मुसलमानों को दिए गए अपने वादे से मुकर गए। उन्होंने **सेवर्स** की संधि द्वारा ख़लीफा के साम्राज्य को विखण्डित कर मुस्लिमों के पवित्र स्थलों- मक्का व मदीना को उसके नियंत्रण से मुक्त कर अरबों की प्रभुता में सौंप दिया। भारतीय मुसलमानों में इन कृत्यों को लेकर बहुत रोष था। ख़िलाफत को बनाये रखने के लिए भारतीय मुसलमानों ने स्वयं को संगठित किया। महात्मा गांधी ने ख़िलाफत के मुद्दे पर भारतीय मुसलमानों का समर्थन किया। संयुक्त प्रान्त के एक सम्मेलन में, जिसमें ख़िलाफत के सम्बंध में अपनी प्रतिक्रिया देने संबंधी विचार चल रहा था। " उसी सम्मेलन में महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम **नान-को-आपरेशन** शब्द का प्रयोग किया।''[17] जो आगे चलकर असहयोग में रूपांतरित एवं विकसित हुआ। गांधी का विचार था कि "यदि हमें सरकार का विरोध तलवार से नहीं करना है तो उससे(सरकार) अपने स्वैच्छिक सहयोग को वापस ले लेना, एक सच्चा विरोध होगा।"[18] 22-23 नवम्बर को दिल्ली में हुए अखिल भारतीय ख़िलाफत सम्मेलन में सर्वप्रथम असहयोग का आह्वान किया गया। जिसे 1-3 जून को इलाहाबाद में हुए खिलाफत कांफ्रेंस में स्वीकार कर लिया गया। कांफ्रेंस में असहयोग सम्बन्धी एक चार चरणों का कार्यक्रम घोषित किया गया-

1. उपाधियों का बहिष्कार
2. सिविल सेवाओं (वकील, डॉक्टर, शिक्षक आदि) का बहिष्कार
3. पुलिस और सेना का बहिष्कार, अन्ततः
4. करों की ना-अदायगी

ख़िलाफत कांफ्रेंस द्वारा असहयोग कार्यक्रम स्वीकार कर लिए जाने पर महात्मा गांधी अली बन्धुओं के साथ मिलकर पूरे देश में ख़िलाफत की रक्षा हेतु असहयोग का आह्वान करने लगे। पूरे भारत में गांधी को समर्थन मिल रहा था। स्वदेशी आन्दोलन के बाद यह दूसरा जन आंदोलन बन रहा था। परंतु इसकी व्यपकता स्वदेशी आंदोलन से बहुत अधिक थी। इस आंदोलन में केवल शहरी मध्यवर्ग ही भाग नहीं ले रहा था, अपितु शहरों की कामगार जनता के साथ कस्बों एवं गांवों के छोटे-छोटे व्यापारी, दुकानदार, कामगार, किसान सबने एक साथ समर्थन में आवाज़ उठाई। गांधी ने अपने प्रस्ताव पर सार्थक जन प्रतिक्रिया को देखकर असहयोग आंदोलन को व्यवस्थित एवं व्यापक रूप से चलाने के लिए इसे कांग्रेस द्वारा इसे अनुमोदित करवाने का प्रयास करने लगे।

महात्मा गांधी ने गुजरात की प्रान्तीय कांग्रेस सभा में अपना असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव रखा। वहां इस आधार पर प्रस्ताव का विरोध किया गया कि 'जब तक महासभा असहयोग का निश्चय न करे, तब तक प्रान्तीय परिषदों को प्रस्ताव पारित करने का अधिकार नहीं है।'[19] काफ़ी बहस-मुबाहिसे के पश्चात गांधी का असहयोग प्रस्ताव पास हुआ। अब गांधी 'कांग्रेस पर भी ऐसा ही कार्यक्रम बनाने के लिए जोर डालने लगे, जो पंजाब के अत्याचार, ख़िलाफत के अत्याचार और स्वराज के तीन मुददों पर केंद्रित होता।'[20]

गांधी 1920 में अपने पुराने राजनीतिक और वैचारिक आधार से पूरी तरह हट चुके थे। जहाँ 'उन्होंने 1919 के अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में संवैधानिक सुधारों को अपनाने के लिए जोर दिया था।'[21] वहीं अब गांधी स्वराज को अपना राजनीतिक लक्ष्य घोषित कर चुके थे। यद्यपि उनकी स्वराज सम्बन्धी अवधारणा काफी अस्पष्ट सी थी। वे ना तो स्वयं इसकी व्याख्या करते थे और न ही किसी पुरानी व्याख्या के सन्दर्भ में स्वीकार करते थे। **जवाहर लाल नेहरू** जो असहयोग को लेकर काफ़ी उत्साहित थे वो भी स्वराज के विषय में सशंकित से थे-

"यह ज़ाहिर था कि हमारे ज्यादातर नेताओं के दिमाग़ में स्वराज का मतलब आज़ादी से बहुत छोटी चीज़ थी। गांधीजी इस विषय पर एक अज़ीब तौर पर अस्पष्ट रहते थे। और इस बारे में साफ़ विचार करने वालों को वह बढ़ावा नहीं देते थे।"[22]

गांधी का आह्वान लोगों को आकर्षित कर रहा था। वह जहाँ-जहाँ भी जा रहे थे, वहां भारी संख्या में भीड़ जमा हो रही थी। पूरा देश उफान पर था, वह गांधी के साथ आवाज़ बुलंद कर रहा था। अन्य सभी राजनीतिक संगठन एवं व्यक्तित्व नेपथ्य में चले गए थे। महात्मा गांधी ने 1अगस्त,1920 से देश-व्यापी सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। गांधी के समर्थकों के दबाव में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन सितम्बर 1920 में कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में गांधी के असहयोग सम्बन्धी कार्यक्रम पर विचार किया जाना था। अधिवेशन 4-9 सितम्बर को आयोजित किया गया। अधिवेशन का सभापतित्व लाल लाजपत राय कर रहे थे। असहयोग के समर्थक व विरोधी दोनों ही काफ़ी संख्या में अधिवेशन में आये हुए थे।

गांधी ने अपना **असहयोग प्रस्ताव** रखते हुए उसके समर्थन में कहा-

"चूंकि ख़िलाफ़त के प्रश्न पर भारत और ब्रिटेन दोनों देशों की सरकार मुसलमानों के प्रति अपना फ़र्ज पूरा करने में असफल रही है..... चूंकि अप्रैल 1919 की घटनाओं के मामले में उक्त दोनों सरकारों ने पंजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने में व उन अफसरों को सजा देने में, जो पंजाब की जनता के प्रति असभ्य व सैनिक-धर्म विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरें है, घोर लापरवाही की है।

अत: कांग्रेस की राय है कि भारत में तब तक शान्ति नहीं हो सकती जब तक उक्त दोनों भूलों का सुधार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय सम्मान की मर्यादा को क़ायम रखने के लिए और भविष्य में इस प्रकार की भूलों को दोहराने से बचने के लिए उक्त मार्ग केवल स्वराज की स्थापना ही है। इस कांग्रेस की यह राय है कि जब तक उक्त भूलों का सुधार न हो जाये और स्वराज की स्थापना न हो जाये भारतवासियों के लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है कि वे क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार करें व अपनाएं।"[23]

अपने असहयोग के कार्यक्रम के अंतर्गत गांधी ने निम्नलिखित कार्यों को प्रस्तावित किया[24] -

1. सरकारी उपाधियों व अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और जिला एवं म्युनिसिपल-बोर्ड व अन्य संस्थाओं में लोग नामज़द हुए हों, इस्तीफा दे दें।

2. सरकारी दरबारों, स्वागत-समारोहों तथा सरकारी-अफसरों द्वारा किये गए या उनके सम्मान में किये जाने वाले अन्य सरकारी व अर्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाए।

3.सरकार के, सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले, व सरकार समर्थित स्कूलों व कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय, उनके स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों व कालेजों की स्थापना की जाये।

4. वकीलों व मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश आदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मदद से खानगी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हो।

5. फ़ौजी, क्लर्की व मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भर्ती होने से इनकार कर दें।
6. नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के बावज़ूद कोई चुनाव के लिए खड़ा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इनकार कर दें।
7.विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।

अधिवेशन में गांधी के असहयोग प्रस्ताव पर काफी बहस हुई। पुराने कांग्रेसी नेताओं में केवल मोतीलाल नेहरू को छोड़कर अन्य सभी इस प्रस्ताव के विरोध में थे। 'बंगाल पूरी तरह सहमत नहीं था और देशबंधु दास तो गांधी के असहयोग कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे।'[25] अधिकांश प्रतिनिधि गांधी के अदालतों और कौंसिलों के बहिष्कार से सहमत नहीं थे। इस प्रस्ताव का विरोध करने वाले अन्य दिग्गज कांग्रेसी नेताओं में विपिनचन्द्र पाल, एनी बेसेंट, मदनमोहन मालवीय, जिन्नाह, लाला लाजपत राय आदि थे। चितरंजन दास कौंसिलों में प्रवेश के मुद्दे पर काफी विरोध किया। फिर भी, 'जब प्रस्ताव पर मतदान हुआ तो 1855 प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव का समर्थन किया, जबकि 873 उसके विरोध में थे।'[26]

संख्या के आधार पर यह गांधी की जीत अवश्य थी, परन्तु कांग्रेस का पूर्ण समर्थन गांधी को अभी नहीं प्राप्त था। विपिनचन्द्र पाल और चितरंजन दास कांग्रेस में किसी अलगाव को रोकने के लिए प्रयासरत थे। अन्त में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि प्रस्ताव को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार कर लिया जाए परन्तु इस पर किसी प्रकार की कार्यवाही का अंतिम निर्णय नागपुर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में लिया जाय। इस बीच कौंसिलों के चुनाव में कांग्रेस भाग नहीं लेगी।

कलकत्ता विशेष अधिवेशन के पश्चात गांधी असहयोग का प्रचार पूरे जोरों से देशभर में करने लगे। असहयोग के समर्थन में जनता का उत्साह और व्यापक होता जा रहा था। सभी सामाजिक वर्गों से गांधी को समर्थन मिल रहा था। इस बीच गांधी ने **एक वर्ष में स्वराज** का नारा दिया, जिसने जनता को अति उत्साहित कर दिया।

कांग्रेस के नागपुर वार्षिक अधिवेशन (दिसम्बर 1920) की अध्यक्षता पुराने कांग्रेसी नेता विजयराघवाचार्य कर रहे थे। यहाँ असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वयं चितरंजन दास ने रखा और लाला लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया। इस अधिवेशन में गांधी का विरोध समाप्त हो चुका था। पूरी कांग्रेस पार्टी एकमत होकर गांधी के असहयोग कार्यक्रम के साथ थी। प्रस्ताव के विरोध में केवल जिन्ना मंच से बोले। उन्होंने गांधी को चेताया, "इस समय देश का भाग्य जिन दो लोगों के हाथों में है, उनमें से एक मि. गांधी है। इसलिए इस मंच से खड़े होकर, यह जानते हुए कि बहुमत उनके साथ है। मैं उनसे अपील करता हूँ कि इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, वे कुछ रुककर विचार करें।"[27] जिन्नाह की प्रतिनिधियों द्वारा हूटिंग की गई। 'उसी शाम जबकि अधिवेशन समाप्त भी नहीं हुआ था, जिन्नाह ने मध्य भारत से बम्बई के लिए ट्रेन पकड़ ली। उनका–कांग्रेस का 14 वर्षों का साथ समाप्त हो चुका था, क्योंकि कांग्रेस अब गांधी की हो चुकी थी।'[28]

शाम को बीमार मदनमोहन मालवीय ने अपना संदेश पत्र के माध्यम से सभा में भेजा जिसमें कांग्रेस के नए पथ व असहयोग प्रस्ताव दोनों का विरोध किया गया था। परन्तु वहां किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। कांग्रेस पूरी तरह एकमत होकर गांधी के साथ खड़ी थी। 'जब प्रस्ताव पर मतदान लिया गया तो प्रस्ताव के विरोध में केवल दो मत पड़े, एक सिंध व एक संयुक्त प्रान्त के प्रतिनिधि का।"[29] दिसम्बर 1920 में असहयोग कार्यक्रम को कांग्रेस द्वारा अपना लिए जाने से इसका पूरे भारत में तीव्रता के साथ प्रसार हुआ। आंदोलन उत्तरोत्तर तीव्र होता जा रहा था। सरकार जितना दमन करती जनता उसी अनुपात में उसका निर्भीक होकर प्रतिकार कर रही थी। पूरे देश मे उत्तेजना स्वरूप तनाव का माहौल व्याप्त था। पुलिस की कार्यवाहियों से जन आक्रोश में वृद्धि हो रही थी। बहिष्कार, रैलियाँ,धरना प्रदर्शन सार्वजनिक जीवन के अंग बन चुके थे। जनता के हृदय में अब न तो सरकार के लिए सम्मान भावना थी और न भय का कोई साम्राज्य।

इसी दौरान संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर जिले में **चौरी-चौरा** नामक स्थान पर 4 फरवरी 1922 को एक हिंसक झड़प हो गयी। वहां पर पुलिस ने बल का प्रयोग करते हुए शांतिपूर्ण आंदोलन का दमन किया। आन्दोलनकारियों को मारा–पीटा गया। इससे जनता के संयम का बांध टूट गया और वह हिंसात्मक तरीक़े से उपद्रव पर उतर गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि स्थानीय पुलिस चौकी में आगज़नी कर दी गयी। इस आगज़नी में 22 पुलिस वालों की जलकर मृत्यु हो गयी।[30]

महात्मा गांधी इस कृत्य से बहुत विचलित हुए। उन्होंने तत्काल असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया। इसी के साथ उन्होंने बारदोली में प्रस्तावित सविनय अवज्ञा को भी स्थगित कर दिया। **बारदोली के प्रस्ताव** में कहा गया :

" कांग्रेस कार्यसमिति चौरी-चौरा कांड में भीड़ के अमानुषिक कार्यों की निंदा करती है जिसने निर्दयता से पुलिस के सिपाहियों की हत्या की और जान-बूझकर थाने में आग लगा दी। जब भी सविनय अवज्ञा आंदोलन जन-संघर्ष का रूप धारण करता है, तभी हिंसात्मक बग़ावत होने लगती है। इससे ज़ाहिर है कि देश मे काफ़ी अहिंसा नहीं है। इसलिए कांग्रेस कार्यसमिति यह निश्चय करती है कि आम आंदोलन रोक दिया जाए।"[31]

महात्मा गांधी के इस निर्णय से देश स्तब्ध रह गया। उसके सारे उत्साह पर पानी फिर गया। कांग्रेस के भीतर इसका तीव्र विरोध हुआ। उस समय कांग्रेस के अधिकतर नेता जेलों में बंद थे। वर्षों बाद उस घटना के विषय मे **सुभाष चंद्र बोस** ने अपनी **आत्मकथा** में लिखा:

यह देश के लिए बड़ी दुर्घटना थी कि जब जनता का उत्साह रोके नहीं रुकता था, तभी आंदोलन रोक दिया गया। गांधीजी के ख़ास साथी देशबंधु दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय, जो जेल में थे। इस ख़बर से विचलित हो गए। मैं उन दिनों देशबन्धु के साथ था और देखा क्रोध और दु:ख के कारण वे पागल हो रहे थे।[32]

जब पंडित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय व अन्य नेताओं ने गांधी के फैसले का तीव्र विरोध करते हुए उन्हें जेल से पत्र लिखा कि 'बिना सर्वसम्मति के इस तरह से आंदोलन वापस लेने का फैसला नहीं किया जा सकता है।' तो इस पर गांधी ने सीधा-स्पष्ट उत्तर देते हुए लिखा, "नागरिकता की दृष्टि से कैदी मर चुका होता है और उसे नीति के बारे में कहने-सुनने का कोई अधिकार नहीं है।"[33] गांधी अहिंसा से किसी भी प्रकार समझौता नहीं करना चाहते थे। उसके लिए वह आंदोलन तक को समाप्त कर सकते थे। उन्होंने 19 फरवरी को **यंग इंडिया** में लिखा, "आंदोलन को हिंसक होने से बचाने के लिये मैं हर एक यंत्रणा, पूर्ण बहिष्कार, यहां तक कि मौत को भी सहने के लिए तैयार हूँ।[34]

असहयोग आंदोलन स्थगित किया जा चुका था। सरकार, जो अब तक गांधी पर हाथ डालने में डर रही थी। उसने 10 मार्च 1922 को गांधी को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। गांधी ने आंदोलन के निषेधात्मक कार्यक्रम को स्थगित कर दिया था, परन्तु उसके रचनात्मक कार्यक्रम को चलाने में किसी प्रकार की रोक नहीं थी। गांधी के अनुयायी राजनीतिक आंदोलन से दूर खादी, ग्रामोद्योग, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण, राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्रों में सक्रिय हो गए।

आन्दोलन वापस ले लिए जाने पर भारत सरकार ने कांग्रेसी नेताओं एवं अन्य असहयोगियों को जेल से रिहा करना शुरू कर दिया। सरकार अपने सबसे बड़े विद्रोही को पिंजरे में डाल चुकी थी। अब वह अन्य नेताओं के समर्थन से अपनी संवैधानिक सरकार को सुचारू रुप से चलाना चाह रही थी। जेल से सभी कांग्रेसी नेताओं के बाहर आने पर **कौंसिलों में प्रवेश** के मुद्दे पर एक बार फिर आंतरिक टकराहट हुई।

कांग्रेस में जो अब भी पुराने असहयोग के प्रस्ताव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहते थे, **अपरिवर्तनवादी** कहलाये। इनके विपरीत जो असहयोग की पुरानी निषेधाज्ञा से हटकर कौंसिलों में जाना चाहते थे, **परिवर्तनवादी** कहलाये। परिवर्तनवादियों का नेतृत्व चितरंजन दास व मोतीलाल नेहरू कर रहे थे। इनके अनुसार, जब बाहर सत्याग्रह का आंदोलन स्थगित है तो इस स्थिति में उसे कौंसिलों के माध्यम से ज़ारी रखना चाहिए। जिससे राजनीतिक रूप से असक्रियता का शून्य न पैदा हो और जनता के हितों की आवाज भी कौंसिलों में उठायी जाती रहे।

1922 का कांग्रेस वार्षिक अधिवेशन बिहार प्रान्त के **गया** में आयोजित किया गया। यहाँ अपरिवर्तनवादियों व परिवर्तनवादियों में शक्ति प्रदर्शन होना था। 'दास कांग्रेस को गांधी की नीति से हटाकर उसे मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड संवैधानिक सुधारों के अंतर्गत सृजित कौंसिलों में प्रवेश के बहिष्कार को खत्म करना चाहते थे। लेकिन दास का कौंसिलों के बहिष्कार को समाप्त करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित नहीं हो सका।'[35] इस पर चितरंजन दास ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। इस अधिवेशन में अपरिवर्तनवादियों की विजय हुई।

जनवरी,1923 में दास व मोतीलाल नेहरू ने मिलकर **स्वराज पार्टी** का गठन किया। पार्टी गठन के साथ ही वह अपने प्रचार-प्रसार में सक्रिय हो गए। उस समय राजनीतिक रूप से करने के लिए बाहर कोई माहौल नहीं था। गांधी के शिष्यों को छोड़कर अन्य नेताओं को उनके रचनात्मक कार्यों में रुचि नहीं थी। अत: वे सभी स्वराज पार्टी को अपना समर्थन

देने लगे। मई,1923 में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। दास ने यहाँ बहुमत अपने पक्ष कर लिया। उनके कौंसिलों में प्रवेश सम्बन्धी प्रस्ताव को '71 के मुकाबले 96 मतों का बहुमत प्राप्त हुआ।'[36] दिसम्बर,1920 जहाँ कांग्रेस ने अपनी पुरानी नीति को छोड़कर गांधी के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों को अपना लिया था। वहीं ढाई वर्ष पश्चात कांग्रेस गांधी के मार्ग से विचलित होते हुए पुन: अपनी पुरानी नीति पर आ गयी।

1919–20 में गांधी भारतीय असन्तोष को आवाज़ देने वाले एकमात्र नेता के रूप में उदित हुए। पूरा देश गांधी की पतवार थाम चुका था। कांग्रेस के पास न तो कोई नया विचार था और न ही कोई अग्रगामी उद्देश्य जिससे कि वह जनता को आकर्षित कर उसका समर्थन प्राप्त कर सके। उस समय गांधी का विरोध कांग्रेस के लिए आत्महत्या से कम नहीं होता। गांधी ने अपने आंदोलन को संगठन प्रदान करने के लिए **सत्याग्रह सभा** का गठन कर चुके थे। यदि कांग्रेस असहयोग प्रस्ताव को स्वीकार न करती तो गांधी अपना आंदोलन सत्याग्रह सभा के माध्यम से संचालित करते। ऐसे में कांग्रेस की स्थिति भी नरमपंथियों के 'लिबरल फेडरेशन' जैसी बन कर रह जाती। बहुत सम्भव था कि वह भी इतिहास के पन्नों में खो जाती। **जूडिथ ब्राउन** ने स्पष्ट किया है कि 'उस समय कांग्रेस के नेता के असहयोग के झंडे तले इसलिए नहीं आ गये कि उनकी असहयोग के सिद्धांतों में पूर्ण आस्था थी। बल्कि वास्तविक कारण उनके पास अन्य विकल्प का ना होना था।'

1923 तक परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन आ चुका था। गांधी जेल में थे, उनका आंदोलन क्रमश: मर चुका था। एक प्रकार से राजनीतिक शून्यता का वातावरण था। कांग्रेसी नेताओं के लिए यह अपनी पुरानी राजनीति में पुन: वापस लौटने के लिए उपयुक्त अवसर था। इसलिए कांग्रेस के अधिकांश पुराने नेता स्वराज पार्टी के झंडे तले इकट्ठा हो गए। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि अपरिवर्तनवादियों में वही लोग थे जो गांधी के विचारों से प्रेरित होकर देश व समाज सुधार के नाम पर राजनीति में आये थे। इनमें से ऐसे व्यक्तियों की संख्या नगण्य ही थी जो गांधी युग से पहले राजनीति में सक्रिय रहे होंगे। इसके विपरीत परिवर्तनवादियों में अधिकांश राजनीतिक पृष्ठभूमि के नेता थे।

शीघ्र ही कांग्रेस में परिवर्तनवादियों के विचारों का सामंजस्य बिठाने के लिए सितम्बर,1923 में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। जिसमें 'स्वराजियों को परिषद के लिए कांग्रेसजनों को चुनने के लिए मताधिकार प्रयोग करने की अनुमति दे दी गयी।'[37] बाद में दिसम्बर 1923 को **काकीनाडा** में हुए कांग्रेस के वार्षिक
अधिवेशन में दिल्ली विशेष अधिवेशन के प्रस्ताव को अनुमोदित कर दिया गया। इस प्रकार, कांग्रेस में विखण्डन नहीं हुआ और स्वराजी कांग्रेस के भीतर ही बने रहे। कौंसिलों के चुनाव नवम्बर 1923 में हुए जिसमें स्वराज पार्टी को भारी सफलता मिली। नरमदल वालों की हार हुई और अधिकांश प्रान्तों में स्वराजी काफी संख्या में चुने गए। 'धारासभा में मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में 48 स्वराजी और जिन्नाह के नेतृत्व में 24 निर्दलीय सदस्यों ने मिलकर सरकार विरोधी मोर्चा बनाया।'[38]

महात्मा गांधी 5 फरवरी,1924 को स्वास्थ्य कारणों से जेल से रिहा कर दिए गए। 22 मई को गांधी ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें स्वयं के अपरिवर्तनवादी होने की बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "मैं उनकी(स्वराजियों) की राह में रोड़े नही अटकाउंगा या उनके विधानमंडलों के प्रवेश के विरुद्ध प्रचार नहीं करूँगा।"[39]

इतिहास का एक विचित्र संयोग देखिए। दिसम्बर,1919 में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के समय तिलक ने गांधी के मार्ग से असहमति प्रदर्शित करते हुए एक निजी बातचीत में पत्रकार दुर्गा दास से कहा था, "मैं उनके(गांधी) के रास्ते में नहीं खड़ा होउंगा, हालांकि मैं महसूस करता हूँ कि 'अनुकूल सहयोग' से ज़्यादा हासिल होगा।"[40] जून, 1924 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की अहमदाबाद में बैठक हुई। गांधी ने इस बात पर जोर दिया कि "कांग्रेस सदस्य के लिए कताई की न्यूनतम अर्हता निर्धारित की जाय व कौंसिलों में जाने वाले सदस्यों को कांग्रेस के पदों से हटाया जाए।"[41] उनके दोनों प्रस्ताव अस्वीकृत हो गए। गांधी ने स्वीकार किया कि वे 'पराजित एवं अपमानित' हुए हैं।[42]

गांधी ने मोतीलाल व दास से एक समझौता किया जिसके अंतर्गत स्वराजी कांग्रेस संगठन के अभिन्न सदस्य रहते हुए काउंसिलों में कार्य कर सकते थे। इसके बदले कांग्रेस की सदस्यता के लिए कताई योजना लागू करने की बात स्वीकार कर ली गयी। अगले वर्ष गांधी ने कांग्रेस का सम्पूर्ण संगठनात्मक दायित्व स्वराजियों को सौंपकर अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए अलग से एक **अखिल भारतीय चरखा संघ** स्थापित करने का निश्चय किया।[43]

गांधी और कांग्रेस एक साथ, एक लीक पर सदैव नहीं चलते थे। राजनीतिक परिस्थितियाँ कांग्रेस को गांधी के क़रीब लाती व दूर ले जाती थी। ठीक इसी प्रकार गांधी जब कोई राजनीतिक आंदोलन आरम्भ करते थे तो कांग्रेस को अपना संगठनात्मक आधार बनाते थे। अन्य समय वह कांग्रेस से अलग अपने रचनात्मक कार्यों को सम्पादित करते रहते थे। यहाँ असहयोग आंदोलन पश्चात एक बार गांधी व कांग्रेस फिर अलग रास्तों पर थे।

संदर्भ :-

1. गांधी, मोहनदास करमचंद., *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास,* पृष्ठ- 08
2. *CWMG,* vol- XV, p- 165
3. Sarkar, Sumit., *Modern India (1885-1947),* - p- 187
4. गांधी, मो. क., *हिन्द स्वराज,* पृष्ठ- 31
5. Maddison, 'The Economic and Social Impact of Colonial Rule in India', in *Class Structure.* Ref. In Tharoor, Shashi., *An Era of Darkness,* p- 61
6. Census.gov.in, *Census Report of 1911,* Office of Ragistrar General, India.
7. Mason Philip., *The Men who Rulled India.* Ref. in Tharoor, Shashi., *An Era of Darkness,* p- 61
8. सितारमैय्या, पट्टाभि., *कांग्रेस का इतिहास,* खंड- 1, पृष्ठ- 40
9. Desai, A. R., *Social Background of Indian Nationalism,* p- 217.
10. Quoted in, ताराचंद, *भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,* खंड-3, पृष्ठ- 509
11. ताराचंद., *भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास,* खण्ड-3, पृष्ठ- 500.
12. पूर्वोक्त. पृष्ठ- 500
13. पूर्वोक्त. पृष्ठ- 500
14. नम्बूदिरीपाद, ई. एम. एस., *भारत का स्वाधीनता संग्राम,* पृष्ठ- 174
15. गांधी, मो. क., *सत्य के साथ मेरे प्रयोग,* पृष्ठ- 293.
16. पूर्वोक्त. पृष्ठ- 294.
17. गांधी, मो. क., *सत्य के साथ मेरे प्रयोग,* पृष्ठ- 308
18. वही, पृष्ठ-308
19. गांधी, मो. क., *सत्य के साथ मेरे प्रयोग,* पृष्ठ- 317
20. Sarkar, *Sumit, Modern India (1885-1947),* p- 216
21. यंग इंडिया, 31 दिसम्बर 1919, *CWMG,* vol- XVI, p- 360-61
22. नेहरू, जवाहरलाल, *मेरी कहानी,* पृष्ठ- 101
23. *CWMG,* vol- XVIII, p- 230-31
24. *CWMG,* vol- XVIII, p- 230-231
25. सीतारमैय्या, पट्टाभि, *कांग्रेस का इतिहास,* खण्ड- 1, पृष्ठ- 157.
26. *CWMG,* vol- XVIII, p- 260
27. वोलपर्ट, स्टेनली., *जिन्नाह: मोहम्मद अली से कायद-ए-आज़म तक,* पृष्ठ- 110.
28. Gandhi, Rajmohan., *Understanding the Muslim Mind,* p- 135.
29. Brown, M. judith., *Gandhi's Rise to Power(1915-1922),* p- 297
30. Chauri-Chaura, *Gorakhpur District Official Site* (gorkahpur.nic.in)
31. *CWMG,* vol- XXII, p- 377.
32. Bose, Shubhas, Chandra., *The Indian Struggle (1920-1942),* p- 82

33. दत्त, रजनी पाम., *आज का भारत,* पृष्ठ–308

34. Young India, 16 faburary 1922.

35. Ref. in: Guha, Ramchandra., *Gandhi: the Years that Changed the World (1915–1948),* p– 200.

36. Ibid, p– 201

37. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खंड –3, पृष्ठ– 541

38.पूर्वोक्त, पृष्ठ– 541

39. Young India, 22 may,1924

40. Das, Durga., *From Curzon to Nehru and After,* p– 70

41. *CWMG,* vol– XXIV, p– 191–92.

42. Young India, 3 july, 1924.

43. Sarkar, Sumit., *Modern India: 1885–1947,* p– 248.

-: सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. गांधी, मोहनदास करमचंद., *सत्य के साथ मेरे प्रयोग अथवा आत्मकथा* (अनु.– महावीर प्रसाद पोद्दार), दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल, 2013.

2. गांधी, मो. क., *दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास* (अनु.– कालिका प्रसाद), दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 2019.

3. गांधी, मो. क., *हिन्द स्वराज* (अनु.– कालिका प्रसाद), दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल, 2014.

4. दत्त, रजनी पाम., *आज का भारत* (अनु.– रामविलास शर्मा), दिल्ली, ग्रन्थशिल्पी इंडिया, 2012.

5. नेहरू, जवाहरलाल., *मेरी कहानी* (अनु.– हरिभाऊ उपाध्याय), दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 2013.

6. नम्बूदरीपाद, ई. एम. एस., *भारत का स्वधीनता संग्राम* (अनु.– आनंदस्वरूप वर्मा), दिल्ली, ग्रन्थशिल्पी इंडिया, 2004.

7. वोलपर्ट, स्टेनली., *जिन्नाह : मुहम्मद अली से कायद–ए–आज़म तक* (अनु.– अभय कुमार दुबे), नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2008

8. सीतारमैय्या, पट्टाभि., *कांग्रेस का इतिहास खंड– 1,* (अनु.– हरिभाऊ उपाध्याय), दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, 2009.

9. ऋतुश्री., सम्पादित. *1921 के असहयोग आन्दोलन की झांकियां,* दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2019.

10. Bose, S. Chandra., *The Indian Struggle:1920–1942,* Delhi, Oxford University Press, 1997.

11. Brown, M. Judith., *Gandhi's Rise to Power:1915–1922,* Cambridge, Cambridge University press, 1972.

12. Bangopadhyay, Shekhar., *From plassey to Partition and After: History of Modern India,* Delhi, Orient Blackswan, 2014

13. *Collected Works of Mahatma Gandhi (CWMG),* 100 Volumes: 1956–1994, Delhi, Publication Division, Government of India, 2007.

14. Chandra, Mukherjee, Mahajan & Panikkar., *India's Struggle for Independence,* New Delhi, Penguin Books India, 2012

15. Das, Durga., *From Curzon to Nehru and After,* New Delhi, Rupa publication, 1981.

16. Dubey, Ishita Banerjee., *A History of Modern India,* New Delhi, Cambridge University Press, 2015.

17. Desai, A. R., *Social Background of Indian Nationalism,* New Delhi, Sage Publication, 2018.

18. Guha, Ramchandra., *Gandhi : the Years that Changed the World 1915–1948*, Gurgaon, India, Penguin Random House, 2018.
19. Gandhi, Rajmohan., *Understanding the Muslim Mind*, Gurgaon, India, Penguin Random House, 2000.
20. Mason, Philip., *The Men who Rulled India,* Delhi, Rupa Publication, 1992.
21. Tharoor, Shashi., *An Era of Darkness: The British Empire in India,* New Delhi, Aleph Book Company, 2016.
22. Tarachand., *India's Freedom Struggle*, vol- 3, Delhi, Publication Division, Government of India, 2017.
23. Sarkar, Sumit., *Modern India:1885–1947,* delhi, Macmillian India, 2005.